Journal
of the
Oriental Institute
M.S. University of Baroda
ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

फिल्मी गीतों में पंजाबी लोकधुनों का प्रभाव

डा. मनदीप कौर
सहायक प्राध्यापिका
गायन संगीत
गुरू नानक गर्ल्ज़ कॉलेज, यमुनानगर, हरियाणा।

चलचित्र जनसंचार का एक सशक्त माध्यम और भारतीय चलचित्र भारतीय संस्कृति का दर्पण ह। ''चलचित्र का शाब्दिक अर्थ उस चित्र से है जो किसी पर्दे पर चलता फिरताअथवा गतियुक्त दिखाया जाए। इसमें अभिनय के माध्यम से किसी भी कहानी को प्रस्तुत किया जाता है।[1] हिन्दी सिनेमा ने बहुत कम समय में हमारे जीवन पर बहुत अधि क प्रभाव डाला है। परन्तु यह भी सत्य है कि जिस प्रकार सिनेमा ने हमारे लोकजीवन को प्रभावित किया है, उसी प्रकार हिन्दी सिनेमा भी भारत की विविध रंगों से भरी लोक संस्कृति के प्रभाव से अछूता नहीं रह पाया। कला संस्कृति का दर्पण है और संस्कृति किसी भी देश अथवा प्रांत के विशिष्ट जन समुदाय की रुचि आचार–विचार, कला–काशल और बौद्धिक स्तर आदि का प्रतिबिम्ब होती हैं। लोक कलाओं में सरलता, सहजता, आडम्बरहीनता, स्वाभाविकता आदि होने के कारण एक अन्य ही प्रकार की गरिमा व पवित्रता समाई होती है। कलात्मक नियमों के बन्धन से परे ह्रदयगत भवनाओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से लोक कलाएं एक उत्कृष्ट माध्यम सिद्ध होती हैं तथा व्यक्तिगत भावनाओं की अपेक्षा सामूहिक भावनाओं का संचार करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। यही लोक कलाएँ संगीत के रूप में नृत्य के रूप में, चित्रकला या वास्तुकला के रूप में उन भावनाओ, धारणाओं एंव विश्वासों आदि के साथ–साथ सम्पूर्ण परिवेश, रहन – सहन, तौर – तरीके, सोच विचार आदि को प्रतिबिम्बित करती है जो संस्कृति का दर्पण कहे गए हैं। लोक संस्कृति के इसी दर्पण को फिल्म निर्देशक सिनेमा के पर्दे पर उतारने की कोशिश करत रहे हैं और फिल्म संगीत निर्देशकों ने उनके इस प्रयास को सफल बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिन्दी सिनेमा जिसे बालीवुड के नाम से जाना जाता है, की शुरूआत भारतीय सिनेमा के पिता दादा साहिब फाल्के ने एक मूक फिल्म ''राजा हरीशचन्द्र'' बनाकर की, जिसे 5 मई सन् 1913 में भारत और 1914 में लंदन में प्रदशित किया गया। चूंकि यह एक मूक फिल्म थी, इसलिए फिल्म को मनोरंजक बनाने के लिए फिल्म के प्रदशन से पूर्व मंच पर नृत्य का आयोजन किया गया। ध्वनिरहित फिल्मों के दौर में फिल्म के प्रर्दशन के समय मंच पर वाद्यवृन्द बिठा दिया जाता था, जो फिल्म में प्रदर्शित भावों के अनुकूल संगीत बजाया करते थे। इसी प्रकार हिन्दी सिनेमा में संगीत का प्रथम प्रयोग किया गया। नाट्यशास्त्र में भी कुछ इसी प्रकार नाटक के प्रारम्भ में संगीत योजना का अल्प वर्णन मिलता है। नौटंकी, स्वांग, रामलीला, रासलीला आदि लोक नाट्यकलाओं में भी इसी प्रकार की सगीत योजना

[1] डा. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, पृ. 1

देखने को मिलती है। जब सवाक् फिल्मों का निर्माण होने लगा तो संवादों के साथ–साथ गीतों के लिए भी फिल्मों में जगह बन गई। नवाब वाजिदअली शाह ''रहस्नृत्य'' का विशाल आयोजन करते थे जिसमें कृष्ण की भूमिका वे स्वयं निभाते थे। इसी रहस्नृत्य ने भविष्य में थियेटर को बहुत प्रभावित किया।

परन्तु हिन्दी फिल्मों में गायन का आरम्भ 14 मार्च 1931 को प्रदर्शित हुई पहली बोलती फिल्म'' आलमआरा'' के प्रदर्शन के साथ हुआ। इस फिल्म में संगीत दिया था फिरोजशाह बी. मिस्त्री एवं बी. ईरानी ने। इस समय फिल्मों में कलाकार को स्वयं ही प्रत्यक्ष गायन करना होता था। जल्द ही फिल्मों में पार्श्व गायन और पार्श्व संगीत का चलन भी प्रारम्भ हो गया। इसके बाद फिल्मों में गीतों की क्रान्ति सी आ गई। फिल्मी गीत इतने अधिक पसंद किये जाने लगे कि पूरी गाती हुई फिलम ही बनने लगी। उदाहरण के लिए फिल्म आलमआरा के बाद सन् 1932 ई. में 'इन्द्रसभा' फिल्म आई जिसमें कुल 71 गाने थे।[2] हिन्दी फिल्मों के आरम्भकाल से ही सम्पूर्ण भारत से कलाकार, संगीतकार, गीतकार अपना भाग्य आज़माने बालीवुड आते रहे हैं और साथ ही ले आए वे अपनी लोक संस्कृति और लोक कलाएँ जिन्होंने सदा ही फिल्मों की कथा, पृष्ठभूमि, गीत, संगीत को प्रभावित किया। हिमाचल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात कौन सा ऐसा राज्य है, जिसने हिन्दी फिल्मों के संगीत पर अपना प्रभाव नहीं छोड़ा। लोकगीतों की अपनी धुने होती हैं। संस्कार गीत, विवाह गीत, श्रम गीत इन सबकी अपनी – अपनी धुने होती हैं। कजरी, चैती, दादरा, पंजाबी, राजस्थानी लोकगीतों का तो कुछ फिलमकारों ने अपनी फिल्मों में ज्यों का त्यों प्रयोग कर लिया है।

जब लोकगीतों का फिल्मों में प्रयोग किया गया पारिस्थितिक गीत बनकर रह गए। लोकगीत वास्तव में वे गीत होते हैं जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समाज अपनाता है। सामान्य लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित, तथा लोक के लिए रचे गए गीतों को लाकगीत कहा जाता है। मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज ही उद्भूत करता है, वही लोकगीत है। लोकगीत बहुत पहले लिखे गए जबकि फिल्मों का कलारूप नया है। लोकगीत केवल लोकगीत नहीं होते बल्कि उनके प्रदर्शन का अपना लोकपक्ष भी होता है। लेकिन जब लोकगोतों का प्रयोग फिल्मों में किया जाता है तब वे अपने लोक परिवेश को छोड़कर सिनेमा के परिवेश में ढल जाते है। कजरी, चैती, दादरा, पंजाबी, राजस्थानी लोकगीतों को तो कुछ फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों में ज्यों का त्यों प्रयोग कर लिया है। हिन्दी फिल्मों में भारत के विभिन्न प्रदेशों के लाकसंगीत के प्रयोग की परम्परा बहुत समृद्ध है, परन्तु पंजाब के लोक संगीत की अपनी अलग ही मस्ती है और फिल्म संगीतकारों ने अपने गीतों में उनका बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है। चूंकि ं लोक संगीत और सिनेमा दोनो का ही मूल मकसद था लोक जीवन की अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन। इस कारण सिनेमा और लोकगीत एक – दूसरे के पूरक भी साबित हुए हैं।

[2] डा. उमा गर्ग, संगीत का सौन्दर्य बोध – फिल्म संगीत के संदर्भ में, पृ. 46

वास्तविकता तो यह है कि फिल्म संगीत और लोकसंगीत का कोई मेल नहीं है। लोकगीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है और वे किसी परिस्थिति अथवा घटना को आधार बनाकर नहीं लिखे जाते बल्कि वे तो लोक के रोम–रोम में रचे बसे होते हैं। लोकगीत, लोक जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़े हाते हैं और लोकजीवन के प्रत्येक पहलू का वर्णन लोकगीतों में मिल जाएगा। लोकगीतों में प्रेम, बिरहा, करूणा, ऋतु, उत्सव, सोलह संस्कार, जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं है जिसका वर्णन न किया गया हो। लोकगीत लोक के गीत होते हैं, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समाज अपनाता है। सामान्य लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एंव लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। शास्त्रीय नियमों की परवाह न करते हुए सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है। अतः लोकगीत शब्द का अर्थ है : लोक प्रचलित गीत, लोक रचित गीत ओर लोक विषयक गीत। लोकगीतों के अन्तर्गत संस्कार गीत (जन्म, मुण्डन, पूजन, विवाह, जनेऊ आदि अवसरों के गीत), पर्व गीत (बसंत, सावन आदि), लोक गाथा या गाथा गीत (आल्हा, ढोला आदि), पेशा गीत (गेहूँ पीसते हुए, फसल काटते हुए) तथा जातीय गीत आते हैं। ये लोकगीत खुशी, दुःखों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा पौराणिक कथाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सिनेमा जगत ने लोक संगीत को बड़ी तेजी से लोकप्रिय बनाया। फिल्म जगत के आारम्भिक दौर में शास्त्रीय संगीत ने अपना परचम लहराया। सन् 1931ई से 1942 ई. तक इसी प्रकार की फिल्मों का प्रचलन रहा। ' बाम्बे टाकीज' से ' सरस्वती देवी ' और 'एस. एन. त्रिपाठी' शुद्ध रागों की बंदिशे बनाते थे। उस समय कव्वाली, ठुमरी, दादरा, कजरी इत्यादि का विशेष प्रचलन था। इसके बाद 1942 में आई फिल्म 'खजान्ची' से गीत संगीत के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया। यह था , पंजाब की लोक धुनों तथा पश्चिम की 'जैज़' संगीत की धुनों का समावेश और मिश्रण।[3] 1940 ई. के बाद संगीतकारों ने लोकसंगीत के मोती चुनकर अपना जादू बिखेरा। क्षेत्रीय फिल्मों के साथ – साथ कई हिन्दी फिल्मों का निर्माण भी हुआ जो लोकसंगीत पर आधारित थी। बहुत सी लोक शैलिया तो फिल्मों में प्रयुक्त होने के कारण ही लोकप्रिय हुई, जैसे – बंजारा लौकशैली।[4] लोकगीतों का प्रयोग किसी फिल्म में उसकी किसी परिस्थिति के अनुरूप करना बहुत कठिन कार्य है परन्तु कई बार इनका प्रयोग फिल्म में चार चाँद भी लगा देता है। लोकगीतों की अपनी धुनें होती हैं जिनका प्रयोग कुछ फेरबदल के साथ या ज्यों का त्यों हिन्दी फिल्मों में कर लिया जाता है। राज कपूर की फिल्म जागते रहो में एक गाने में पंजाब के लोकगीत के बालों को ज्यों का त्यों प्रयोग किया गया है जो इस प्रकार है – मैं कोई झूठ बोलया, कोई ना, मैं कोई कुफर तोलया, कोई ना, मैं कोई ज़हर घोलया, कोई ना भई कोई ना, भई कोई ना, आए बल्ले बल्ले बल्ले बल्ले बल्ले। पंजाब की झूमती ताल का तो इतना प्रभाव रहा बालीवुड पर कि नौशाद

[3] ओ. पी. माहेश्वरी, हिन्दी फिल्म का गीति साहित्य, पृ. 35
[4] वन्दना, लोकसंगीत के क्षेत्र में इलैक्टोनिक मीडिया की दस्तकए, संगीत – जुलाई 2013, पृ. – 33

साहब एक ठेठ भोजपुरी गाने ''नैन लड़ जईं हैं तो मनवा मा कसक होई बे करी'' गाने में पंजाबी ताल बजवा देते हैं और वो खूब पसन्द भी किया गया। इसी तरह ''उड़े जब जब जुल्फें तेरी'' गाने में धुन तो पंजाबी है, जिसमें पंजाबी लोकगीत ''उत्थे लै चल चरखा मेरा ओ जित्थे तेरे हल वगदे'' की धुन का प्रयोग किया गया है, परन्तु न्त्य और परिदृश्य उत्तरप्रदेश का है। जुगनी पंजाब का बहुत ही प्रसिद्ध लोकगीत है, जिसे पंजाब के लोकगायक आसा सिंह मसताना ने बहुत प्रसिद्ध किया। बालीवुड की कई फिलमों में जुगनी का प्रयोग किया गया जिनमें से बादल फिल्म में गाया गया जुगनी गीत बहुत प्रसिद्ध हुआ। पंजाब का ही एक ओर लोकगीत है ''दो जुल्फा थल्ले वे थल्ले, सारा जग सोहणा ऐ मेरे मीहिऐ तरे थल्ले वे थल्ले'' इसी लोकगीत की धुन का प्रयोग राज कपूर की फिल्म ''राम तेरी गंगा मैली'' के गीत ''हुसन पहाड़ों का क्या कहना'' में किया गया। पंजाब का मशहूर विदाई गीत ''साडा चिड़ियाँ दा चम्बा ए बाबला वे असां उड जाणा'' इसके मुखड़े का हूबहू बहुत ही सुन्दर प्रयाग सुपरहिट हिन्दी फिल्म '' कभी–कभी '' में किया गया है। एक अन्य सुपरहिट फिल्म '' धड़कन '' में भी इस गीत का प्रयोग किया गया है। पंजाबी लोकगीतों में टप्पे, छल्ला, भांगड़ा, माहिया, जुगनी, बोलियों का प्रयोग भी फिल्मों में किया गया है।

मनोज कुमार की सुपरहिट फिल्म ''पूरव पश्चिम'' में तो अंग्रेज़ी की मशहूर कविता ट्विंकल – ट्विंकल लिटल स्टार को पंजाबी रंग में रंग दिया गया और आशा जी और महेंद्र कपूर जी ने इस गीत को बहुत ही खूबसूरती से निभाया। ''मेरा रंग दे बसंती चोला'' गीत तो पंजाब की मिट्टी में रच बसा है जो कि 1965 में बनी मनोज कुमार की फिल्म ''शहीद'' में प्रयोग किया गया। ऐसी मान्यता है कि इस गीत को शहीद भगत सिंह ने अंतिम समय में गाया था। इस गीत की तुकबंदी 1927 में जेल में कैद क्रान्तिकारियों ने की थी, परन्तु जब फिल्म शहीद बनाने से पहले अपने पूरे दल के साथ भगत सिंह की माँ से मिलने गए तो गीत संगीतकार प्रेम धवन ने उस घटना से प्रभावित होकर इस गीत में नए शब्द जोड़कर इस गीत को नया रूप दिया। ओ. पी नैयर साहब के गानों में पंजाब का रंग खूब झलकता है। उन्हीं के एक गीत '' कज़रा मुहोब्बत वाला'' में पंजाब के लाकगीतों की आत्मा झलकती है जब गायक कहता है '' हाय ! वे मैं तेरे कुरबान''। नैयर साहब का ही एक ओर गीत '' ये देश है वीर जवानों का'' जोकि ''नया दौर '' फिल्म में फिल्माया गया और इसी गीत ने उन्हें 1958 का बेस्ट फिल्म संगीत निर्देषक का फिल्मफेयर अवार्ड दिलवाया, यह गीत भी पूर्णतः पंजाब के लोक संगीत के रंग में रंगा हुआ है। इसी फिल्म का एक ओर गीत ''रेशमी सलवार कुर्ता जाली का '' गीत भी पूरी तरह पंजाबी लोकधुन पर आधारित है। जब वी मेट फिल्म का ''नगाड़ा बजा'' गीत हो या कश्मीर की कली फिल्म का ''मेरी जां बल्ले –बल्ले'' पंजाबी धुनों से प्रेरित ये गीत अपनी मस्ती और उन्मुक्तता के कारण बहुत पसंद किये गए। 1995 में आई पंजाबी संस्कृति पर आधारित फिल्म '' दिल वाले दुल्हनिया ले जाएगें '' में पंजाबी लोक संस्कृति तथा भरतीय संस्कारों को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया।

ISSN: 0030-5324
UGC CARE Group 1

पंजाबी पृष्ठभूमि वाली हिन्दी फिल्मों में तो पंजाबी लोकसंगीत, लोकवाद्यों और लोकधुनों का खूब प्रयोग हुआ और खूब पसंद भी किया गया, जिसका एक सुन्दर उदाहरण ''गदर'' फिल्म है, इस फिल्म के गीत ''उड़ जा काले कावां'', ''मुसाफिर जाने वाले'', ''मैं निकला हो गडडी लेके''बहुत प्रसिद्ध हुए। एक ओर जहाँ लोकगीतों ने हिन्दी फिल्मों की सफलता में अपना योगदान दिया, वहीं हिन्दी फिल्मों ने एक क्षेत्र विशेष तक सीमित लोकसंगीत को विश्व स्तर पर बहुत बड़ा मंच प्रदान किया।

फिल मों में लोकगीतों के प्रयोग का एक साकारात्मक पक्ष यह भी है कि जो लोकगीत किसी एक क्षेत्र तक सीमित थे वे एक व्यापक क्षेत्र तथा जनसमूहतक पहुचे। परन्तु आजकल एक ओर उलट चलन भी प्रारम्भ हो गया है। पहले फिल्मी गीत लोकगीतों तथा लोकधुनों पर आधारित होते थे परन्तु अब फिल्मी गीतों की धुनों का प्रयोग क्षेत्रीय लोकगायक अपने लोकगीतों में करने लगे है। यह एक ऐसा दुष्प्रभाव है जिसने लोकगीतों की आत्मा को बुरी तरह क्षतिग्रस्त किया है। कुछ संगीतकार तो लोकसंगीत में रीमिक्स करके उसकी मौलिकता पर प्रहार कर रहे हैं। ऐसे गीतों की लोकप्रियता से मूल लोकगायक तथा लोकगीतों की मौलिकता नष्ट होने लगती है। असली लोकगीत तो केवल ग्रामीण आचल के बुजुर्गों तथा सरकारों और शैक्षणिक संस्थओं द्वारा आयोजित किये जाने वाले युवा उत्सवो, लोक उत्सवों आदि तक ही सीमित होते जा रहे हैं।

अतः स्पष्ट है कि फिल्म संगीत और लोकसंगीत एक – दूसरे के पूरक है। जहा एक ओर लोकगीतो के प्रभाव ने फिल्मी संगीत को सजाया – सवारा है और नए आयाम प्रदान किये है वहीं फिल्म संगीत के साथ से लोकगीतों को नया जीवन मिला और लुप्त होते लोकगीतों ने पुनः जन मानस में अपना स्थान बना लिया।